कोई अन्य मार्ग भी तो नहीं है। रोमानिया में इतनी सुदृढ़ सरकार, बिना खून-खराबे के, समाज की प्रतिक्रियास्वरूप, कुछ ही घंटो में अपदस्थ हुई थी। भारत में तो प्रजातंत्र है। यहां व्यवस्था को हाथ में लेना अधिक आसान है। जरूरत है अपनी प्राथमिकताएं बदलने की। आपात्काल में अपनी प्रथमिकताएं पूरी तरह बदल दी जानी चाहिये।

आपात्काल तभी माना जाता है, जब शासन या तो अपराधियों से परास्त हो जाये, या अपराधियों द्वारा संचालित हो जाये। परन्तु शासन ने सुरक्षा और न्याय को अलग करके, अपनी सारी प्राथमिकताएं इस तरह बदल ली हैं कि जनता उसे परास्त मान ही नहीं रही है। अतः हम जनमत खड़ा करके, शासन को अपनी प्राथमिकताएं बदलने पर मजबूर कर दें। प्रजातंत्र में यह कार्य आसान है। जब शासन अपनी प्राथमिकताएं बदल कर, सुरक्षा और न्याय को प्रमुख मान लेगा, तो अपने आप स्पष्ट हो जायेगा।

हम सब भयभीत हैं। कोई धर्म से, कोई गुरु से, कोई राज्य से, कोई राजनीति से, कोई अपराधी से तो कोई अधिकारी से। भयभीत वही होगा जो असुरक्षित होगा, कायर होगा। हमें भय से मुक्त होने के लिये संगठित होना होगा। कर्तव्य-कर्म ही संगठन का मूल मन्त्र है।

कर्तव्य किसी की सभ्यता-संस्कृति पर आक्रमण नहीं करता। किसी के धर्म में बाधा नहीं डालता। किसी का अधिकार नहीं छीनता। कर्तव्य अपने अर्जित अधिकारों का दुरूपयोग नहीं करता। कर्तव्य शोषण, अत्याचार, आतंक एवं अन्याय का निषेध करता है। कर्तव्य-उत्तरदायित्व ही हमें नेतृत्व की पात्रता एवं क्षमता प्रदान करते हैं। कर्तव्य ही हमारे व्यवहार की कसौटी है।

शिष्यत्व की पूर्णता की कसौटी

शिष्यात् इच्छेत पराजयम्
पुत्रात् इच्छेत् पराजयम्
निर्धनात् इच्छेत् पराजयम्

शिष्य, पुत्र एवं निर्धन से पराजय की कामना करो।
शिष्य का शिष्यत्व जब जागता है, तो गुरू का गुरूत्व उसके साथ सहज ही जुड़ जाता है।

गुरू का गुरूत्व तब सार्थक होता है जब शिष्य इतना योग्य हो जाए कि स्वयं गुरू का सिर श्रद्धावश शिष्य के चरणों में झुक जाए। इस कसौटी के अनुसार शिष्य को निडर होकर गुरू परम्पराओं और उसके उपदेशों की चीर फाड़ करते रहना आवश्यक है। अन्यथा शिष्य गुरू से दो कदम भी आगे कैसे बढ़ेगा? अपने आचार्य का शिष्य/शिष्या होने के नाते मैं तुम्हारे भीतर उसी शिष्यत्व को जागते हुए देखना चाहता हूँ कि विशाल समाज ही नही, बल्कि आचार्यगण भी तुम्हारी उपेक्षा न कर सके। सांसारिक लोगो को, लोभी गुरूओं को, तुम्हारा आचरण असहनीय ही लगेगा, पर गुरू परम्परा तुम्हारी कृतज्ञ होगी। रूढ़ियों को तोड़ने की कोशिश करना इसी साहस का एक भाग है। यह कार्य गुरू की गुरूता के वरण और उपयोग से ही संभव है। गुरू के उद्देश्य के लिये अपने समर्पण को पहले से अधिक प्रखर बनायें ताकि गुरू का गुरूत्व, ऋषि का ऋषित्व सरलता से अपनी भूमिका निभा सके। हम अपनी आत्म समीक्षा करें, अपनी कमी, अपनी सीमायें स्वीकार करें।

शिक्षा का तात्पर्य है परिस्थितियों का सामना कर सकने की योग्यता। अगर परिस्थितियों का सामना कर सकने की क्षमता अभी तक नही जागी, तो समूची शिक्षा और शिक्षा व्यवस्था व्यर्थ है। स्वयं के जीवन में इस परिभाषा के आधार पर, निरन्तर शिक्षित होने अथवा न होने को कसौटी पर तौलते रहना चाहिये।

ज्ञान का तात्पर्य है भले-बुरे की पहचान। प्राकृतिक सिद्धांतों के अनुरूप घटित प्रत्येक आचरण भला है, इसके विपरीत बुरे के अलावा और कुछ नही है।

जरा पहचान कर देखो कि धर्म-संघ में कौन व्यक्ति गुरू की उपरोक्त परिभाषा पर एक-आध कदम चल पा रहा है?